International Journal of Jyotish Research: 2016; 1(1): 11-15

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2016; 1(1): 11-15
© 2016 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 04-05-2016
Accepted: 05-06-2016

डॉ० अनिल कुमार पोरवाल
डॉएस०राधाकृष्णनपोस्टडॉक्टरफेलो, ज्योतिर्विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

Correspondence
डॉ० अनिल कुमार पोरवाल
डॉएस०राधाकृष्णनपोस्टडॉक्टोरलफेलोज्योतिर्विज्ञानविभाग, लखनऊविश्वविद्यालय, लखनऊ

ज्योतिषशास्त्र में वेधशाला की आवश्यकता तथा प्रासंगिकता

डॉ० अनिल कुमार पोरवाल

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और सदाचार के मूल वेदों के षड्-वेदाङ्ग[1] स्वरुप में ज्योतिषशास्त्र प्रमुख अङ्ग के रुप में विद्यमान है। वेदाङ्गों में ज्योतिष का स्थान नेत्रत्वेन मूर्धा के रूप में वर्णित है[2], जिसका कारण इसकी प्रत्यक्षता ही है। समस्त वेदाङ्गों में अग्रगण्य[3] ज्योतिष्पिण्डों (ग्रहों) के गति के कारणभूत, परमपवित्र, रहस्यमयी, समस्त-जगत का आधारभूत, जगत की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयादि काल को प्रदर्शित करने वाला, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप तथा ग्रहों के चार इत्यादि अनेक स्वरूपों का कालश्रयात्मक ज्ञान ही ज्योतिषशास्त्र है, इसी को गणितशास्त्र [4] भी कहा जाता है। जिसके माध्यम से सूर्यादिक ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर कलनात्मक (गणनात्मक) काल [5] (समय) को ज्ञात किया जाता है। वैदिक काल से ही कालविधानशास्त्र की आवश्यकता ही उसकी उपयोगिता को सिद्ध करती है क्योंकि वेदों में उद्धृत यज्ञों के सफलतम आयोजन हेतु काल का ज्ञान अपरिहार्य है जैसा कि कहा गया है-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता: कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेति स वेदयज्ञान् ।। [6]

सामान्य शब्दों में कहा जाय कि इस सृष्टि में व्याप्त समस्त विशिष्ट-दैनिन्दिन अथवा सामान्य सभी प्रकार के कार्य समय के ही अधीन हैं समय के निर्धारण के बिना किसी कार्य की पूर्णता सम्भव नहीं है। विशिष्ट कार्यों के सन्दर्भ में इसकी प्रासंगिकता तथा उपयोगिता और भी अधिक हो जाती है। सामान्य मानव व्यवहार में, वर्ष-मास-दिन-घण्टा-मिनटादि यह समय की इकाई हैं किन्तु ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत त्रुटि-प्राण(असु)- पल(विनाड़ी) -घटी(नाड़ी)- मुहूर्त- अहोरात्र (दिवस तथा रात्रि), तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, गोल, सम्वत्सर, पितृमान (पितरों का अहोरात्र), दिव्यमान (देवासुरों का अहोरात्र) मनुमान, ब्रह्ममान, प्रलय आदि काल की समस्त सूक्ष्म-स्थूल इकाईयों का आनयन तथा उल्लेख किया गया है, जो ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में उल्लिखित तत्सम्बन्धित गणितीय सूत्रों के द्वारा ज्ञात किये जाते हैं, जिनका सैद्धान्तिक आधार हमारे सौर-परिवार में स्थित ग्रह और राशिवृत्त में व्याप्त नक्षत्र हैं।

सामान्यतः अल्पावधि में इन काल रुपी सिद्धान्तों की गणना तथा समय मान में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु दीर्घ कालावधि में युगों के परिवर्तन के कारण कालान्तर भेद से विविध आकर्षण-प्रकर्षण-विकर्षण, अयन-चलन, शर इत्यादि तत्त्वों में अन्तर उत्पन्न होता है जिसके निराकरण हेतु शास्त्रों में वेधयन्त्रों द्वारा प्रत्यक्ष वेध को ही प्रमाण माना गया है

तथा वेध द्वारा प्राप्त बीज संस्कार को पूर्व सिद्धान्त में संस्कारित करने से काल को शुद्धतम करने की परम्परा रही है। अतःत्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के आधाररूपक सिद्धान्त ज्योतिष की ग्रह-गणित परम्परा के अन्तर्गत वेध तथा वेधशालाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

वेध शब्द का निर्माण 'विध्' धातु से हुआ है [7] जिसका अर्थ है किसी आकाशीय ग्रह अथवा तारे को दृष्टि के द्वारा वेधना अर्थात् विद्ध करना। ग्रहों तथा तारों की स्थिति के ज्ञान हेतु आकाश में उन्हें देखा जाता था। आकाश में ग्रहादिकों को देखकर उनकी स्थिति का निर्धारण ही वेध है। परिभाषा रूप में "नग्ननेत्र या शलाका, यष्टि, नलिका, दूरदर्शक इत्यादि यन्त्रों के द्वारा आकाशीय पिण्डों का निरीक्षण ही वेध है।"नलिकादि यन्त्रों सेग्रहों के विद्ध होने के कारण ही इस क्रिया का नाम 'वेध' विश्वविश्रुत है।

दृष्टि तथा यन्त्रभेद से वेध दो प्रकार का होता है- दृष्टि वेध भी अन्तर्दृष्टिवेध तथा बाह्यदृष्टिवेध से दो प्रकार का होता है। यहाँ महर्षियों द्वारा यम-नियम, आसन, प्राणायामादि तपस्याओं से भक्तिज्ञानजन्य नेत्र द्वारा ब्रह्माण्डस्थ पिण्डों के अवलोकन को अन्तर्दृष्टिवेध तथा स्व-स्वनग्न नेत्र द्वारा आकाशस्थ पिण्डावलोकन को बाह्यदृष्टिवेध माना जाता है। जब हम चक्रनलिका, शंकु, दूरदर्शक आदि वेध-उपकरणों से सूर्यादि ज्योति:पिण्डों को देखते हैं तो यन्त्रवेध होता है।

वस्तुतः स्थूल-सूक्ष्मकालविभाग गणित के अन्तर्गत अनर्ह सूक्ष्म-अवयव कालभेद से भविष्यकाल में दीर्घस्वरूप धारण करके ग्रहगणितादिक में विलक्षणता उत्पादित करते हैं अतः गणित की शैथिल्यताजन्य उत्पन्न अन्तरस्वरूप बीजसंस्कारादिक विधियों को वेधयन्त्रों वा उपकरणों की सहायता से साक्षात् वेध करके गणकों के द्वारा शोधित किया जाता है।

वेधशालाओं में यन्त्रों-उपकरणों आदि के सहयोग से कालान्तर के वशीभूत प्राप्त अन्तर का बीज संस्कार करने पर गणितागत-ग्रह आकाशस्थ-ग्रह के सम्मुख होते हैं। इसीलिए वेधकर्मकुशल आचार्यों के द्वारा सिद्धान्त-ग्रन्थों में सम्पूर्ण सिद्धान्तों के रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उनके दर्शन तथा प्रत्यक्ष अवलोकन हेतु यन्त्र-उपकरण, गोलबन्धन आदि के निर्माणादि का स्पष्ट निर्देश सूर्य-सिद्धान्त में प्राप्त होता है। **यथोक्तम्-**

पारम्पर्योपदेशेन यथाज्ञानं गुरोर्मुखात्।
आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।।
भूभगोलस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्।।[8]

पाश्चात्य तथा यूरोपियन खगोलशास्त्री प्रायः मिथ्या प्रलाप करते रहे हैं कि वेध की परम्परा भारतीयों में विद्यमान नहीं थी जबकि प्राचीन वैदिक-वाङ्मय में सर्वत्र वेध अथवा ग्रहों के अवलोकन का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि जो नक्षत्र (सप्तर्षि) उच्चस्थ आकाश में रखे हुए रात्रि में दृष्टिगत होते हैं वे दिन में कहीं चले जाते हैं-

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तन्ददृश्रे कुहचिद् दिवेयुः। [9]

वैदिककाल में ही नक्षत्रों, तारापुञ्जों, सप्तर्षिमण्डल एवं नक्षत्रों की युति-अन्तर आदि का वर्णन मिलता है, जिनका ज्ञान वेध के बिना सम्भव नहीं था। यथोक्तम्-अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहतिः।[10]

वेधयन्त्रों में शङ्कु-यन्त्र का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन है। चल तथा अचल शङ्कु-यन्त्र का प्रयोग ऋग्वेदकाल में हाता था, जैसा कि ऋग्वेद के एक मन्त्र में शङ्कु से वेध प्रक्रिया का वर्णन है-

द्वादशं प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।[11]

एक चक्र अर्थात् वृत्त में तीन केन्द्रों की कल्पना करके उसमें **300+60=360** शङ्कुओं को चल-अचल के रूप में स्थापित करके द्वादश प्रधियाँ लगायी जाती हैं। यह एक पलभा (घटिकायन्त्र) की कल्पना है जिसके किनारे के दो शङ्कुओं के माध्यम से **60°** पर करने वाले षष्ट्यंश यन्त्र की प्रकल्पना की गयी है। अथर्वज्योतिष में द्वादश अङ्गुल शङ्कु के माध्यम से छाया का आनयन करके मुहूर्त लाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[12]

शुल्वसूत्रों में यज्ञसम्पादन के प्रसङ्ग में कुण्ड-मण्डपादि साधन के लिए शङ्कु द्वारा दिग्-साधन का उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारतकाल में भी ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का समुचित ज्ञान था। शल्यपर्व में शुक्र एवं मङ्गल का चन्द्रमा से युति का वर्णन प्राप्त होता है।[13] भीष्मपर्व में तो ग्रहों के युति अन्तरादि विषयों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। इसके परवर्ती ज्योतिष के ग्रन्थों में वेध तथा वेधयन्त्रों का पूर्णतया उल्लेख मिलता ही है। अतः वेध-प्रक्रिया तथा वेधशाला की निर्माण-प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में विद्यमान थी। यह भारतीय ज्ञान शनैः-शनैः यूरोप, ग्रीक तथा अरब में प्रसार को प्राप्त हुआ और वहाँ के ज्योतिषियों ने इस वेध-प्रक्रिया में पर्याप्त अभिरूचि का प्रदर्शन किया।

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिषशास्त्र का प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थ स्वीकृत है। इसके स्पष्टाधिकार में कहा गया है-

तत्तदगतिवशान्नित्यं यथादृकतुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।[14]

अर्थात् उन गतियों के अनुसार प्रतिदिन ग्रह जिस प्रकार दृकतुल्य हो जाते हैं (अर्थात् जिस स्थान पर वेध द्वारा दृष्टिगोचर होते हैं) उस स्पष्टीकरण प्रक्रिया को मैं आदरपूर्वक कह रहा हूँ। सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ के अन्त में गोल, बीज, शङ्कु, यष्टि, धनु, कपाल, मयूर, नर तथा वानर यन्त्रों का उल्लेख कालसाधन के सन्दर्भ में प्राप्त होता है। **यथोक्तम्-**

शङ्कु यष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा।

गुरुपदेशाद् विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः ।।
तोययन्त्रकपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः।
ससूत्ररेणुगर्भेश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत्।।[15]

ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तग्रन्थों में 'आर्यभटीयम्' में कालमापक गोल-यन्त्र का निर्माण[16] तथा प्रयोग-विधि निर्दिष्ट है तथा शङ्कु-यन्त्र[17] का भी वर्णन मिलता है। वराहमिहिर के पञ्चसिद्धान्तिका में वेध सम्पादनपूर्वक बीज संस्कार भी दिखाई देता है।[17] वराहमिहिर के अनन्तर वेध-परम्परा में ब्रह्मगुप्त का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ब्रह्मगुप्त महान दैवज्ञ, वेध-कुशल तथा दृक्सिद्ध ग्रहों के पोषक थे। उन्होंने वेध द्वारा यह अनुभव किया कि प्रचलित विभिन्न सिद्धान्तों के द्वारा दृक्सिद्ध ग्रह प्राप्त नहीं होते। अतः ब्रह्मगुप्त ने स्फुटदृक्सिद्ध ग्रहों के आनयन के लिए ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त की रचना की। इस ग्रन्थ में स्पष्ट सङ्केत है कि नलिकादि यन्त्रों द्वारा स्पष्टतर बीज का साधन कर उससे संस्कृत ग्रहों द्वारा ही निर्णय एवं आदेश करना चाहिए। **यथोक्तम्-**

संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः।
तत्संस्कृते ग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ।।[18]

ब्रह्मगुप्त के बाद **1442** शकाब्द तक वेध-परम्परा वृद्धि पथ में दिखायी देती है। इस बीच मुञ्जाल, श्रीधराचार्य, बल्लालसेन, केशवार्क, महेन्द्रसूरि, मकरन्द, केशव, ज्ञानराज इत्यादि वेधनिपुण दैवज्ञों के प्रयास वेध की दिशा में अन्यतम स्थान रखते हैं। श्रीमद्भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में गोलबन्धाधिकार तथा यन्त्राध्याय नामक शीर्षकों में वेधयन्त्रों का सविस्तार उल्लेख किया है।

दृक्सिद्ध ग्रहसाधन तथा वेध-परम्परा में केशवदैवज्ञ तथा उनके पुत्र गणेशदैवज्ञ का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। **1418** शक के लगभग इन्होंने ग्रह-कौतुक नामक करणग्रन्थ की रचना वेधसिद्ध ग्रहों के आधार पर की है। कालान्तर से इनके ग्रन्थ को वेध द्वारा स्थूल देखकर इनके पुत्र गणेशदैवज्ञ ने वेध द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से ग्रहलाघव नामक करणग्रन्थ की रचना की। तत्पश्चात् लगभग दो शताब्दियों तक ज्योतिष एवं वेध-परम्परा का प्रचार-प्रसार सामान्य गति से चलता रहा। इसके बीच अनेक विद्वान हुए, जिनमें कमलाकर भट्ट तथा मुनीश्वर आदि प्रमुख हैं। इनके ग्रन्थों में भी वेध-सम्बन्धी पूर्वागत परम्परा का ही परिपालन है।

इस तरह सूर्यसिद्धान्त या आर्यभट्ट के काल से प्रारम्भ कर लगभग **15**वीं शताब्दी तक मुख्यतया शङ्कु-यन्त्र, घटीयन्त्र, नलिकायन्त्र, यष्टियन्त्र, चापयन्त्र, तुरीययन्त्र, फलकयन्त्र, दिगंशयन्त्र तथा स्वयंवहयन्त्र का प्रयोग दिखाई देता है।यद्यपि इस काल में वेध प्रक्रिया विकसित हो चुकी थी, नये यन्त्रों का आविष्कार भी प्रचलन में था, परन्तु स्थायी वेधशालाओं की चर्चा कहीं प्राप्त नहीं होती।

भारत में वेधशालाओं का वास्तविक इतिहास महाराजसवाईजयसिंह द्वितीय के राज्यकाल से प्रारम्भ होता है। जयसिंह का समय **1686** ई0 से **1743** ई0 पर्यन्त माना जाता है। जयसिंह का जन्म **1686** ई0 में हुआ था और त्रयोदश वर्ष की आयु में वे आम्बेर राज्य की गद्दी पर बैठे। महाराज को ज्योतिष तथा वेध इत्यादि का अत्यन्त ज्ञान था तथा वे इस कार्य में रूचि भी लेते थे। [19] तत्कालीन करणादि ग्रन्थों से प्राप्त मान दृग्तुल्य नहीं होते थे और बहुत अन्तर पड़ता था। उस समय टॉलमी की ऐलमैजेस्ट-ला-हायर की ज्योतिष सारणियाँ, उलूगवेग की ज्योतिष सारणियाँ तथा भारतीय ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ विद्यमान थे। उलूगवेग की सारिणी **841** हिजरी में बनी थी, उसी को संसोधित करके 'जिजमुहम्मदशाही' नामक सारिणी-ग्रन्थ का निर्माण हुआ। यह सारिणी हिजरी सन् **1938** के लिए बनी थी।[20] इसके अतिरिक्त हिन्दू तथा यूरोपीय ग्रन्थों के द्वारा सारणियों को देखा गया। परन्तु किसी सारिणी में दृक्तुल्यता नहीं थी।

अतः महाराजसवाईजयसिंह ने इस गणना को शुद्ध करने का सङ्कल्प लिया। उन्होंने हिन्दू, मुस्लिम और यूरोपियन खगोलशास्त्रियों को आमन्त्रण दिया। सभी विद्वानों का सम्यक् सहयोग लेकर सर्वप्रथम महाराज ने दिल्ली में एक वेधशाला बनवायी। इसके पश्चात् जयपुर, उज्जैन, वाराणसी तथा मथुरा में भी वेधशालाएँ स्थापित की गयीं। ये वेधशालाएँ इसलिए बनवायी गयीं कि विभिन्न स्थानों पर एक साथ वेध करने पर स्पष्टान्तर आदि का संस्कार यदि कर दिया जाय तो वेध द्वारा प्राप्त सर्वत्र का मान एक ही होना चाहिए। इसमें शुद्धता का बोध होगा।

दिल्ली की वेधशाला का निर्माण **1724** ई0 में किया गया। इसमें मिश्रयन्त्र के अन्तर्गत पाँच यन्त्रों का निर्माण सम्राटयन्त्र, जयप्रकाशयन्त्र, रामयन्त्र, षष्ठांशयन्त्र तथा पलभायन्त्र का निर्माण हुआ। वर्तमान में यह 'जन्तर-मन्तर'के नाम से भी जाना जाता है। **1728** ई0 में जयपुर की वेधशाला निर्मित हुई। इसमें उन्नीस यन्त्रों का निर्माण किया गया- चक्रयन्त्र, पूर्वकपालीयन्त्र, पश्चिमकपालीययन्त्र, रामयन्त्र, दिगंशयन्त्र, जयप्रकाशयन्त्र, षष्ठांशयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, नाड़ीवलयदक्षिणगोलयन्त्र, नाड़ीवलयोत्तरगोलयन्त्र, पलभायन्त्र, कान्तिवृत्तयन्त्र, यन्त्रराज, उन्नतांशयन्त्र, द्वादशराशिवलययन्त्र, लघुसम्राटयन्त्र, बृहत्सम्राटयन्त्र तथा ध्रुवदर्शकयन्त्र। उज्जैन की वेधशाला का निर्माण **1734** ई0 में हुआ। इसमें सम्राटयन्त्र, नाड़ीवलययन्त्र, दिगंशयन्त्र, शङकुयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, दिक्साधनयन्त्र तथा धूपघटिका यन्त्र का निर्माण किया गया। काशी (वाराणसी) की वेधशाला **1737** ई0में बनवायी गयी। इस वेधशाला मे लघुसम्राटयन्त्र, बृहत्सम्राटयन्त्र, दक्षिणोत्तरभित्तियन्त्र, चक्रयन्त्र, दिगंशयन्त्र और

नाड़ीवलययन्त्र बने हैं। सन् **1738** ई0 में मथुरा की वेधशाला निर्मित हुई। इसमें क्षितिजवृत्ताकारयन्त्र, विषुवद्वृत्तीययन्त्र, छदिसमस्थानकयन्त्र तथा षष्ठांश विलिखित मानयन्त्र बनवाये गये थे। [21]

जयसिंह के अनन्तर आधुनिक वेधकर्ताओं में सर्वप्रथम वेंकटेश, बापूदेवशास्त्री तथा केतकर महोदय का नाम स्मरणीय है। इन्होंने प्राच्य-पाश्चात्य ग्रहगणित के समन्वय से **1818** शक में सूक्ष्मसिद्धान्तमण्डित 'केतकीग्रहगणित' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसी क्रम में सन् **1835** ई0 के उड़ीसा प्रान्त के सामन्तचन्द्रशेखर का भी वेध के क्षेत्र में योगदान स्मरणीय है। इन्होंने दृग्गणितैक्य-सम्पादन के लिए प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत यन्त्रवर्णन के अनुसार कुछ यन्त्रों का निर्माणकर वेध द्वारा 'सिद्धान्तदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की। ज्योतिषशास्त्र की आधुनिक परम्परा में डॉ मेघनाद साहा आदि विद्वान स्मरणीय हैं।

आधुनिक भारतीय वेधशालाओं में मद्रास वेधशाला, तमिलनाडु प्रदेशस्थ कोडाईकनाल वेधशाला, नीलगिरि पर्वत पर स्थित उटकमण्ड वेधशाला, उस्मानिया वेधशाला आदि प्रमुख हैं। और साथ ही साथ राजस्थान प्रान्त के उदयपुर नगर में फतेहसागर जलाशय के निकट स्थित उदयपुर वेधशाला और उत्तराञ्चल प्रदेश के नैनीताल शहर में स्थित नैनीताल वेधशाला भी देश की श्रेष्ठवेधशालाओं में परिगणित है। [22] हाल के कुछ दशकों में भारतीय वेधशाला के निर्माता आचार्य प्रो0 कल्याणदत्तशर्मा जी ने सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, लालबहादुरशास्त्री-राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ (संस्थान) नई दिल्ली, जयपुर, लखनऊ विश्वविद्यालय के ज्योतिर्विज्ञानविभागीयवेधशाला तथा देवसंस्कृतिविश्वविद्यालय, हरिद्वार में नवीन वेधशालाओं का निर्माण करवाया है। [23]

प्रायः दैवज्ञों का मत है कि जब सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थों के द्वारा ग्रहों की स्थिति, ग्रहण, शृङ्गोन्नति तथा उदयास्त में 'न प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि प्रवर्तते' इस कथन के अनुसार वेधशालाओं का प्रयोजन होना अवश्यम्भावी है। प्रायः देखा जाता है कि सिद्धान्त तथा करण ग्रन्थों में ग्रह-स्पष्टादि लाने पर दृश्य-ग्रह स्थिति से कुछ अन्तर पर प्राप्त होता है जो नितरां अशुद्ध है। आजकल बिना बीज संस्कार से संस्कारित ग्रहलाघव और मकरन्दादि ग्रन्थों से आनीत ग्रह दृश्य के समनुकूल नहीं होते हैं जबकि सर्वत्र दृग्गणितैक्य मान का समादर किया जाता है। यात्रा विवाह, उत्सव तथा जातकशास्त्र (जन्मकुण्डली निर्माण) में स्पष्ट ग्रहों से ही फलादेश की स्फुटता बतलायी गयी है, अतः दृग्गणितैक्य मान ही ग्राह्य है। इस सन्दर्भ में सिद्धान्तशिरोमणि के प्रणेता श्रीमद्भास्कराचार्य का कथन स्मरणीय है-

यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेवफलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृदया।।

वशिष्ठ सिद्धान्त में भी कहा गया है-

यस्मिन्पक्षे यत्रकाले तेन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यातिथ्यादिनिर्णयम्।।[25]

इस प्रकार सभी फलादि दृग्गणितैक्य स्पष्टग्रहों पर आश्रित होने पर ही सिद्ध होते हैं। यदि गणितागत ग्रह दृकतुल्य नहीं है तो वेधशाला के यन्त्रों के माध्यम से इनकी स्थिति को निर्धारित किया जा सकता है। वेधशाला की प्रासंगिकता तथा उपयोगिता निम्न बिन्दुओं के माध्यम से अवलोकनार्थ है[26]-

1. ग्रहादिकों के दृग्गणितैक्य निर्णय हेतु
2. कालान्तरागत अन्तर के अन्वेषण हेतु
3. दिग्देशकाल निर्धारण के लिए
4. क्षयाधिमास-काल-स्थिति तत्व के परिशीलन हेतु
5. सूर्य-चन्द्रग्रहण काल में स्थितिकाल-स्पर्श-सम्मीलन-मध्यग्रहण-उन्मीलन-मोक्षादि अवस्था, स्थिति, समय, प्रभावादि के अन्वेषण हेतु
6. अक्षक्षेत्रों की सभी अवस्थाओं तथा स्थितियों के परिज्ञान हेतु
7. ग्रह-नक्षत्रादि की संस्थिति-चार-व्यस्थिति-वर्ण-स्वरूप-कक्षाक्रमादि के सम्यक् अवबोधनार्थ
8. गोलीय पदार्थों के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए
9. खगोलीय घटनाओं के वेधप्रयुक्त परिलेख को प्रदर्शित करने हेतु
10. ग्रह-नक्षत्र युति-ग्रहयुद्ध-समागम-शृङ्गोन्नति-जयपराजयादि विशिष्ट गोलीय विलक्षणघटनाओ के प्रत्यक्षीकरण हेतु।

इसके साथ ही साथ, अन्य समस्त दृष्ट-अदृष्ट कटाह के रूप में स्थित ब्रह्माण्ड के स्वरूप को हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष दर्शन के लिए वेधशाला परम उपयोगी है। अतः आज ज्योतिर्गणित के उन्नयन हेतु वेधशालाओं की महती आवश्यकता है और यही उसका परमोद्देश्य है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन पुरुषार्थचतुष्टय के साधन-स्वरूप ज्योतिर्विज्ञान की आधारभूत प्रयोगशाला, वेधशाला ही है। इसके अतिरिक्त कहीं अन्य इसका परीक्षण, प्रयोग, अनुसन्धान, ज्ञान सम्भव नहीं है। वेधशाला के इन सिद्धान्तों का कालगणना तथा ग्रहादि साधन के सन्दर्भ मेंप्रात्यक्षिक स्वरूप हीअन्य शास्त्रों से इसकी आवश्यकता, उपयोगिता तथा प्रासंगिकता को स्वयं सिद्ध करता है।

यथोक्तम्-

अप्रत्याक्षिशास्त्राणिविवादस्तेषुकेवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ।।

सन्दर्भ

1. **शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा। छन्दशास्त्रं षडेतानि वेदाङ्गानि विदुर्बुधाः।।(बृहन्नारदीयपुराणपूर्वभाग**, **अध्याय**-50, **श्लोक स० 9-10**)

2. वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमनुत्तमम्। (नारदीय संहिता- 1/4)
3. तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम्। (वेदाङ्गज्योतिष-श्लोक 4)
4. सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।(सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय, मध्यमाधिकार, कालमानाध्याय, श्लोक -6)
5. सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लोक-10
6. ऋक्ज्योतिष - श्लोक 36
7. संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश - वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 1069
8. सूर्य सिद्धान्त, ज्योतिषोपनिषद्ध्यायः, श्लोक 2-3
9. ऋग्वेद-1/24/10
10. ऋग्वेद-10/85/02
11. ऋग्वेद-1/164/48 से उद्धृत ज्योतिर्विज्ञान सन्दर्भसमालोचनिका, पृष्ठ 309
12. अथर्वज्योतिष, श्लोक-5
13. भृगुसूनू धरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ। (महाभारत शल्यपर्व, 11/18)
14. सूर्यसिद्धान्त, स्पष्टाधिकार, श्लोक 14
15. सूर्यसिद्धान्त, ज्योतिषोपनिषद्ध्यायः, श्लोक 20-21
16. काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततस्समगुरुं लघु गोलम्।पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत्स्वधिया च कालसमम् ।। (आर्यभटीयम्, गोलपाद, श्लोक 22)
17. आर्यभटीयम्, गोलपाद, श्लोक 28 ।
18. पञ्चसिद्धान्तिका, चतुर्दशोध्यायः, छेद्यकयन्त्राणि।
19. ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त से उद्दधृत, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तसमीक्षात्मकअध्ययनम्, प्रस्तावना, पृ0 4
20. भारतीय ज्योतिष का इतिहास, पृष्ठ 199
21. भारतीय ज्योतिष का इतिहास, पृष्ठ 201
22. ज्योतिर्विज्ञानसन्दर्भसमालोचनिका, पृष्ठ 311-312
23. ज्योतिषतत्त्वांक, गीताप्रेस, पृष्ठ 446
24. ज्योतिर्विज्ञानसन्दर्भसमालोचनिका, पृष्ठ 312
25. सिद्धान्तशिरोमणि, स्पष्टाधिकार, श्लोक संख्या 1
26. वशिष्ठ सिद्धान्त से 'वेधशाला वैभवम्' में उद्धृत, पृष्ठ 11
27. वेधशालावैभवम्, पृष्ठ 6